अध्याय दूसरा

नैतिकता का अर्थ और स्वरूप ।

१) नैतिकता क्या है ?
२) नैतिकता शब्द और व्याख्या ।
३) व्यावहारिक नैतिकता ।
४) वैचारिक नैतिकता ।
५) उपन्यास रचना और उपन्यासकार का जीवन दर्शन ।
६) उपन्यासकार की आत्माभिव्यक्ति और प्रवृत्ति ।
७) उपन्यास रचना और सामाजिक नैतिकता ।
८) उपन्यास का नैतिक व्यवस्था पर प्रभाव ।
९) निष्कर्ष ।

अध्याय दूसरा

नैतिकता का अर्थ और स्वरूप ।

नैतिकता क्या है ?

नैतिकता का अर्थ है - हृदय की पवित्रता । जिसका हृदय पवित्र नहीं होता वह नैतिक नहीं हो सकता । बौद्धिक ज्ञान और नैतिकता में संबंध नहीं है, यह कह कर मैं उसकी अवहेलना करना नही चाहता, परन्तु इस सच्चाई पर आवरण डालना भी नहीं चाहता कि बौद्धिक ज्ञान और नैतिकता में गहरा संबंध नहीं है । नैतिकता का गहरा सम्बन्ध हृदय की पवित्रता से है ।

जिसके हृदय में दूसरों के प्रति सहानुभूति, करूणा, मैत्री, दूसरों के विकास के प्रति सद्भावना, सहिष्णुता और संयम है, वही पवित्र है । नैतिकता के विकास के लिए हमने उन्हीं मानदंडों को मान्य किया है, जो हृदय की पवित्रता में सहायक बनते हैं ।

हमनें नैतिकता के तेरह मानदण्ड मान्य किये हैं और उन्हीं के आधार पर हमारा अगला विवेचन स्थित किया है ।

नैतिकता के मानदण्ड :

" अभयं मृदुता सत्यं, आर्जवं करूणा धृति: ।
अनासक्ति: स्वावलम्बा: स्वशासनं सहिष्णुता ।।
कर्तव्यनिष्ठता व्यक्ति गवार्यस्य विसर्जनम् ।
प्रामाणिकत्वं यस्मित् स्यु:, नीतिमान् उच्यते नर: ।।" [१]

---

१. मुनी नथमल, " नैतिक पाठमाला, " पृष्ठ १, राजस्थान, प्रथम संस्करण १९६९ ई ।

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

जिस मनुष्य में – १) अभय, २) मृदुता – अहं का विसर्जन, ३) सत्य, ४) आर्जव – कपट का विसर्जन, ५) करुणा, ६) धैर्य, ७) अनासक्ति, ८) स्वावलम्बन, ९) आत्मानुशासन, १०) सहिष्णुता, ११) कर्तव्यनिष्ठा, १२) व्यक्तिगत संग्रह का विसर्जन, १३) प्रामाणिकता – ये गुण मिलते हैं, उसे नैतिक कहा जाता हैं।

बौध्दिक और तकनीकी शिक्षा के लिए इन मानवीय गुणों का विकास आवश्यक है।

<u>नैतिकता शब्द और व्याख्या</u> :

प्रत्येक समाज अपने अंदर शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के लिये एक विशिष्ट प्रकार की आचार पध्दति निर्धारित करता है। इस आचार पध्दति का लक्ष्य यही होता है कि समाज के सदस्य एक-दूसरे से टकराने के बजाय परस्पर मिल-जुलकर जीवन व्यतीत करें और समाज के सामूहिक जीवन को समृध्द एवं सुखी बनायें। समूचे समाज द्वारा स्वीकृत यह विशिष्ट आचार पध्दति धीरे-धीरे एक सुस्पष्ट एवं सुनिश्चित व्यवस्था का रूप धारण कर लेती है और समाज के व्यक्तियों के आचरण का निर्देशन एवं नियंत्रण करने लगती है। यहाँ आकर इस सुनिश्चित एवं व्यवस्थित आचार पध्दति को ` नैतिकता ` की संज्ञा दी जाती है और सामाजिक जीवन में व्यवस्था एवं शान्ति बनाये रखनेवाला आचरण नैतिक कहलाने लगता है। इस प्रकार नैतिकता से अभिप्राय व्यक्ति के आचरण का निर्देशन करनेवाली इस विशिष्ट नियम-व्यवस्था अथवा आचार पध्दति से है जिसे समाज अपने सदस्यों के लिए रचता है। इस व्यवस्था के अनुरूप किये जाने वाले आचरण को ` नैतिक ` कहकर समाज उसकी सराहना करता है, और विपरीत आचरण को ` अनैतिक ` कहकर उसकी भर्त्सना करता है।

सामाजिक जीवन में शान्ति एवं समरसता उत्पन्न करने वाली नैतिक व्यवस्था की व्याख्या करते हुए श्री. राप्फा पैरी ने भी इसे " परस्पर विरोधी हितों के संघर्ष को मिटानेवाली व्यवस्था "[१] कहा है।

तदनुसार, व्यक्ति अथवा समाज के विविध वर्गों की संघर्षात्मक प्रवृत्तियों और हितों की सीमा बाँध दी जाती है ताकि ये प्रवृत्तियाँ सामूहिक जीवन में उत्पात मचाने के बजाय अपने ही दायरे में सीमित रहें। यह ऐसी व्यवस्था है जिससे समाज के सदस्य आपस में ही लड-भिड कर नष्ट होने की बजाय एक-दूसरे के हित का ध्यान रखते हुए परस्पर मिल जुलकर रह सकते हैं।

१) <u>सामाजिक नैतिकता</u> -

जिस प्रकार मूल नैतिकता का चरम लक्ष्य है मानवता का कल्याण, उसी प्रकार मानसिक नैतिकता भी समाज-विशेष के कल्याण को सर्वोपरि मानती है। " सामाजिक नैतिकता का लक्ष्य है समाज में व्यवस्था उत्पन्न करना तथा समाज-जीवन को अक्षुण्ण बनाये रखना जिससे की समाज के अंतर्गत प्रत्येक समूह, और समूह के अंतर्गत प्रत्येक सदस्य के हित परस्पर टकराने के बजाय एक दूसरे को सहयोग देते रहे और समाज में समरसता बनी रहे। "[२] इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए सामाजिक नैतिकता कुछ नियमों, बन्धनों और कर्तव्यों की योजना करती है। कालान्तर में यही नियम और कर्तव्य सामाजिक नैतिकता का प्रकट एवं सर्वस्वीकृत रूप धारण कर लेते हैं।

---

१. सुखदेव शुक्ल, " हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता, " पृष्ठ ४, कानपुर, सितम्बर, १९६६ ई।

२. सुखदेव शुक्ल, " हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता, " पृ. ७, कानपुर, सितम्बर १९६६ ई।

उदाहरण के लिए, भारतीय समाज में वर्णाश्रम धर्मानुसार विहित कर्तव्य सामाजिक नैतिकता के आधार है। तदनुसार प्रत्येक व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने वर्ण और आश्रम संबंधी धर्मों - अर्थात कर्तव्यों का पालन करें। भारतीय समाज व्यवस्था में जिस प्रकार समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों के अलग अलग कर्तव्य निर्धारित किये गये हैं, उसी प्रकार मानव-जीवन को चार खंडों में अथवा आश्रमों मे विभक्त कर के ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास - इन चार आश्रमों अथवा जीवन-खण्डों के कर्तव्य भी निश्चित कर दिये गये है'। भारतीय समाज व्यवस्था वर्णाश्रम-व्यवस्था पर टिकी हुई है। इसलिए सामाजिक नैतिकता ने इस व्यवस्था को कायम रखने के लिए तदनुरूप कुछ निश्चित धर्मों अथवा कर्तव्यों के पालन पर सर्वाधिक आग्रह किया है।

वर्णाश्रम धर्म के अतिरिक्त, भारतीय समाज में व्यक्ति के साधारण धर्म अथवा सामान्य कर्तव्यों की व्यवस्था भी की गयी है। ये साधारण धर्म सभी व्यक्तियों के लिए मान्य ठहराये गये हैं और वर्णाश्रम धर्म की तरह किसी वर्ण अथवा आश्रम तक ही सीमित नहीं हैं। इन साधारण धर्मों में धैर्य, क्षमा, चौर्याभाव, शौच, इन्द्रियनिग्रह, सत्य, अक्रोध, आदि दस धर्म सम्मिलित किये गये हैं। इतनाही ही नहीं इन साधारण धर्मों के अतिरिक्त अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य - ये चार यम, और शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-परिनिधान - ये पाँच नियम भी हैं। इस प्रकार वर्णाश्रम धर्म, साधारण धर्म, यम और नियम - सब मिलकर भारतीय समाज की नैतिक व्यवस्था का रूप स्थिर करते हैं। सामाजिक नैतिकता इस व्यवस्था को अक्षुण्य बनाये रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपना-अपना धर्म पालन करने के लिए आदेश देती है।'[१]

---

१. सुखदेव शुक्ल, 'हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता,' पृष्ठ ७, कानपुर, सितम्बर, १९६६ ई।

२) वैयक्तिक नैतिकता -

सामाजिक नैतिकता को बाह्य नैतिकता भी कहा गया है । व्यक्ति पर इसका दबाव बाहर से पडता है और इस दबाव के कारण वह अपने आचरण को सामाजिक नियमों और रीतियों के अनुसार ढालता हुआ, समाज की व्यवस्था को सुदृढ बनाता है । इस दृष्टि से देखा जाये तो व्यक्ति में नैतिक आचरण का गुण बाहर से उत्पन्न किया जाता है, यह जन्मजात नहीं होता ।

उपन्यास रचना और उपन्यासकार
का जीवन-दर्शन :

उपन्यास-रचना में उपन्यासकार के दार्शनिकता सम्बन्धी गुणोंपर बार-बार जोर दिये जाने का एकमेव कारण यही है कि उपन्यासकार को मानव जीवन के व्याख्याकार के रूप में देखा गया है । पुराने नैतिक आदर्शों के -हासोन्मुख होने के कारण उपन्यासकार को इस नैतिकता के संक्रमण काल में मानव जीवन के चिरन्तन सत्यों एवं आधारभूत लक्ष्यों की व्याख्या करने की जिम्मेदारी सम्भालनी पडी है ।

उपन्यासकार के इस महत्वपूर्ण दायित्व के बारें में विचार करने पर पता चलेगा कि वह अपनी रचना में मानव-जीवन की जो व्याख्या करता है उसमें निष्पक्षता के बजाय निजत्व का प्राधान्य होता है । निजत्व के प्राधान्य से तात्पर्य है, उसके व्यक्तित्व, उसके हृदय पक्ष और बुद्धिपक्ष का उसकी रचना में प्राधान्य । उपन्यासकार के भावपक्ष में उसकी रूचि-अरूचि, आशा-आकांक्षा तथा उसके मन में उठनेवाले विविध मनोभाव आते हैं । अत: जब उपन्यासकार अपने सम्पूर्ण भावपक्ष सहित अपनी रचना में प्रकट होता है तो उसके द्वारा की गई मानव जीवन की व्याख्या निष्पक्ष अथवा शास्त्रीय न होकर वैयक्तिक बन जाति है और उसमें दार्शनिक की शुष्कता के स्थान पर साहित्यकार की सरसता उमड पडती है ।

उपन्यासकार की व्याख्या में निजत्व अथवा व्यक्तित्व के प्राधान्य का दूसरा रूप प्रकट होता है जब उपन्यासकार अपने जीवन-दर्शन के अनुरूप ही यह व्याख्या करता है। उपन्यासकार के जीवन-दर्शन के अंतर्गत उसके मत और विश्वास, नैतिक आदर्श और मूल्य तथा मान्यताएँ और धारणायें आती हैं। जिस प्रकार मानव-जीवन की व्याख्या करते समय उपन्यासकार के मनोभावों की अनिवार्य छाप पडती है, उसी प्रकार इस पर उसके जीवन-दर्शन की छाप पडना भी अनिवार्य है। उपन्यासकार एक विशिष्ट दृष्टिकोण अथवा विशिष्ट मनोभाव से मानव-जीवन का अध्ययन करता है, और तदनुसार ही अपनी रचना में मानव जीवन की व्याख्या करता है। इस दृष्टि से उपन्यासकार की रचना उसकी मानस-सन्तान सरीखी है और इसमें अपने स्त्रष्टा के स्वभाव की विशिष्टता और विचित्रता, गुण और दोष, तथा उसका निजत्व और व्यक्तित्व साफ-साफ झलकता है।

उपन्यास-रचना पर उपन्यासकार के सम्पूर्ण व्यक्तित्व और समस्त चिन्तन की अनिवार्य छाप को सभी साहित्यकारों ने स्वीकार किया है। जैनेंद्रकुमार ने इसी भाव को व्यक्त करते हुये कहा है - ` साहित्य साहित्यिक की आत्मा को व्यक्त करता है।`[१] ग्रेनविल हिक्स ने भी उपन्यासकार की रचना में उसके जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति को अनिवार्य माना है और इसे उसकी कृति में एक-सूत्रता लाने का श्रेय दिया है। उनका कथन है - ` ऐसा कोई भी उपन्यासकार या नाटककार नहीं है जिसने अपनी रचना में अपना चिन्तन या जीवन-दर्शन अभिव्यक्त न किया हो।`[२]

यहाँ आकर उपन्यास-रचना और नैतिकता में कोई अन्तर नहीं रह जाता, क्योंकि उपन्यासकार का जीवन-दर्शन, अन्तत:, उसकी वैयक्तिक नैतिकता का दूसरा नाम है।

---

१. जैनेंद्रकुमार, ` साहित्य का श्रेय और प्रेय,` पृ.३१७, पूर्वोदय, दिल्ली, सन १९५३ ई।
२. सुखदेव शुक्ल, ` हिंदी उपन्यास का विकास और नैतिकता,` पृष्ठ २२, कानपुर, सितम्बर, १९६६ ई।

उपन्यासकार की आत्माभिव्यक्ति
और सच्चाई :

उपन्यास-रचना की प्रक्रिया के अतिरिक्त जब हम उपन्यास-रचना में उपन्यासकार की सच्चाई पर विचार करते हैं, तो उपर्युक्त कथन की पुन: पुष्टि हो जाती है। उपन्यासकार की सच्चाई से तात्पर्य है कि उसकी रचना में उसके जीवनादर्शों और सिद्धान्तों का सही-सही प्रकटीकरण होना चाहिए। इस सच्चाई या ईमानदारी के अभाव में उसकी रचना श्रेष्ठ न होकर घटिया किस्म की बनकर रह जायेगी। साहित्यकार की सच्चाई पर आग्रह करते हुए एजरा पाउण्ड ने कहा है - " यदि कोई कलाकार मानव की प्रवृत्ति, अपने स्वभाव अथवा पूर्णता के आदर्शों का गलत चित्रण इसलिए करता है कि वह नक्कू न बने अथवा उसकी कृति परम्परागत नैतिक आदर्शों के अनुरूप रहे, तो वह सच्चा कलाकार नहीं, झूठा कलाकार है।"[१]

उपन्यास-रचना में उपन्याकार की सच्चाई को उसकी आत्माभिव्यक्ति के रूप में भी देखा गया है। आत्माभिव्यक्ति के रूप में भी देखा गया है। आत्माभिव्यक्ति का अर्थ है अपने जीवन-दर्शन और अनुभूतियों का निर्भीक चित्रण। साहित्यिक कृति में साहित्यकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति पर सर्वाधिक आग्रह करते हुए स्काट जेम्स ने कहा है - " हम कलाकार से इस बात की माँग करते हैं कि उसकी रचना सच्ची हो - अर्थात् उसकी मूलभूत मान्यता, सिद्धान्त और विश्वास के अनुकूल हो। " संक्षेप में कहा जाये - उसकी रचना उसके व्यक्तित्व के सर्वथा अनुकूल होनी चाहिये।

---

१. सुखदेव शुक्ल, ' हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता,' पृष्ठ २४, कानपुर, सितम्बर, १९६६ ई।

<u>उपन्यास-रचना और सामाजिक नैतिकता</u> :

उपन्यास-रचना के विविध पहलुओं एवं तत्वों पर उपन्यासकार के जीवन-दर्शन का सुस्पष्ट प्रभाव पड़ने के अतिरिक्त, इस पर समाज की प्रचलित नैतिक व्यवस्था और नैतिक आदर्शों का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। जो नैतिक आदर्श समाज द्वारा मनोनीत होते हैं, वे साहित्य सृजन के क्षेत्र में भी साहित्यकार को प्रेरणा देते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक युग और प्रत्येक समाज का उपन्यास-साहित्य अपने युग और समाज के आदर्शों की छाप लिये रहता है। प्रेमचंद ने साहित्य-सृजन पर समाज के नैतिक आदर्शों के प्रभाव को सुस्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है - "साहित्य अपने काल का प्रतिबिम्ब होता है। जो भाव और विचार लोगों के हृदयों को स्पंदित करते हैं, वेही साहित्य पर भी छाया डालते हैं।"[१]

किन्तु उपन्यास-साहित्य समाज द्वारा मनोनीत आदर्शों को प्रतिबन्धित करने के अतिरिक्त, उन आदर्शों में होनेवाले क्रमिक परिवर्तन की झलक भी दिखा देता है। दूसरे शब्दों में, उपन्यास-साहित्य समाज की नैतिक व्यवस्था और समाज के प्रचलित आदर्शों का चित्र-मात्र ही नहीं, यह समाज के नैतिक परिवर्तन तथा इस परिवर्तन की प्रवृत्तियों को भी चित्रित करता है, इसलिए इसमें समाज की रूढ़िवादिता के साथ-साथ हमें समाज की नैतिक विकासोन्मुखता के भी दर्शन होते हैं। इतना ही नहीं, नैतिक परिवर्तन की जो जो प्रवृत्तियाँ हमें समाज में दिखायी देती है, वे उपन्यास-रचना पर भी अपना प्रभाव डालती हैं।

---

१. सुखदेव शुक्ल, 'हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता,' पृष्ठ २६, कानपुर, सितम्बर १९६६ ई।

उपन्यास का नैतिक व्यवस्था पर प्रभाव :

उपन्यास रचना पर नैतिकता के उपर्युक्त प्रभाव को देखते हुये यद्यपि यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उपन्यासकार के नैतिक चिन्तन तथा समाज के नैतिक आदर्शों का उपन्यास-रचना पर भरपूर प्रभाव पडता है, तो भी इस बात को भुलाया नहीं जा सकता कि उपन्यास साहित्य का समाज के नैतिक चिन्तन पर भी पर्याप्त प्रभाव पडता है। व्याख्याकार के रूप में जहाँ उपन्यासकार मानव जीवन की व्याख्या और विश्लेषण करता है, वहाँ स्त्रष्टा के रूप में वह नये नैतिक आदर्शों का सृजन भी करता है और समाज की नैतिक चेतना को उद्बुद्ध करता है। इस प्रकार व्याख्याकार और सृष्टा के दोहरे उत्तरदायित्व को निभाने के कारण, उपन्यास-साहित्य सामाजिक और नैतिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण साधन भी है और यह समूचे समाज के आचरण को एक निश्चित दिशा में मोडने की क्षमता रखता है।

निष्कर्ष :

उपन्यास और नैतिकता के परस्पर सम्बन्ध के उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त हम यह कह सकते हैं कि उपन्यास-रचना में नैतिक-तत्व के अनिवार्य समावेश के अतिरिक्त, उपन्यास-रचना पर नैतिकता के बहुत दूरगामी प्रभाव होते है। उपन्यासकार के जीवन-दर्शन के रूप में उपन्यासकार की नैतिकता उसकी रचना पर छायी रहती है कि यही उसकी कृति का मूलस्थर बनकर उसकी रचना के अंगप्रत्यंग पर अपना प्रभाव डालती है और इसका स्वरूप निर्धारित करती है।